और इस प्रकार उसे कृष्णभावना की दिशा में निर्णायक रूप से अग्रसर करता है। प्रापञ्चिक जीवन में जीव काम-विकार और प्रकृति पर प्रभुत्व की कामना से निश्चित रूप में युक्त रहता है। प्रभुत्व की इच्छा और इन्द्रियतृप्ति मायाबद्ध जीव के परम शत्रु हैं; परन्तु कृष्णभावनामृत की शक्ति के द्वारा वह इन्द्रियों, मन और बुद्धि का संयम करने में सक्षम हो जाता है। अकस्मात् कर्म और स्वधर्म का त्याग करना आवश्यक नहीं है; शुद्ध स्वरूप में एकाग्र मति के द्वारा कृष्णभावना का शनैः शनैः विकास करने से उस शुद्ध सत्त्वमयी अवस्था की प्राप्ति हो जाती है जो इन्द्रियों और चित्त से परे है। यह सिद्धान्त इस अध्याय का परम सार है। संसार की अपरिपक्व दशा में ज्ञान अथवा योगासनों के अभ्यास से इन्द्रियों को वश में करने का कृत्रिम प्रयास मानव के लिये भगवत्प्राप्ति में कभी सहायक नहीं हो सकता। इसके लिए सद्गुरु से कृष्णभावना की शिक्षा प्राप्त करनी होगी।

ॐतत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।
इति भक्तिवेदान्त भाष्ये तृतीयोऽध्यायः।।